Parichaya
(UGC Care Listed Journal)
ISSN No: 2321-936X (Print)
Volume-37, No-1, 2022 (Jan-March)

स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त स्त्रियों का आर्थिक संघर्ष

डॉ0 रवीन्द्र कुमार सिंह

शोध–निर्देशक, सहायक आचार्य / विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

बृजेश कुमार यादव

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय सिंगरामऊ, जौनपुर (उ0प्र0)

सारांश –

साहित्य का मुख्य उद्देश्य समाज जीवन का यथार्थ परिचय कराना होता है। विवेचित महिला आत्मकथाओं में भी इन महिला आत्मकथाकारों ने अपनी – आत्मकथाओं में अपने जीवन, अपने परिवार के जीवन तथा अपने पास–पड़ोस के लोगों के जीवन में आनेवाले आर्थिक प्रसंगो का लेखा–जोखा दिया है। जिससे समाज की आर्थिक स्थिति आर्थिक समस्याएँ, आर्थिक मजबूरियाँ आदि का ज्ञान होता है। जो आत्मकथाकारों एवं उनके समकालीन समाज की आर्थिक स्थिति का अभ्यास करने में मददगार हो जाता है। जिससे उन आर्थिक स्थितियों के कारणों और परिणामों की चर्चा कर, उस पर सुझाव भरे विचारों की चर्चा विभिन्न बिंदुओं के जरिए कर सकते हैं।

आर्थिक विपन्नता से त्रासदीपूर्ण जीवन मनुष्य सुखी, सम्पन्न जीवन की चाह रखता है। एक सामान्य मनुष्य अपने और अपने परिवार के सुख और विकास के लिए हर समय प्रयत्नशील रहता है। इसी तरह 'कूड़ा–कबाड़ा' इस आत्मकथा में आत्मकथाकार 'अजीत कौर' जी अपनी बच्चियों को अच्छी पढ़ाई और अच्छे भविष्य के सपने देख 'आकलैंड स्कूल' में भरती करवाती हैं। स्कूल का खर्च इतना होता है कि उसे देखकर अजीत जी परेशान होती हैं। स्कूल के खर्च के बारे में वे कहती हैं कि, "पहले तो उसकी लम्बी–चौड़ी लिस्ट देखकर मैं घबरा गई, लेकिन वह मेरा चेहरा देखकर मेरी मजबूरी भाँप गई और उसने कई चीजें अपने आप ही काट दीं।"[1] इस तरह कई गरीब और मध्यवर्ग के लोग चाहकर भी अपने बच्चों को अच्छे स्कूलों में शिक्षा नहीं दे पाते अच्छी शैक्षिक संस्थाओं में पढ़ाई तो अच्छी होती है, लेकिन यह काफी खर्च भरी पढ़ाई होती है, इसलिए एक आम आदमी को इच्छा होते हुए भी अपने बच्चों को वहाँ पर पढ़ाना मुश्किल होता है।

मुख्य शब्द– साहित्य, समाज, आत्मकथा, आर्थिक स्थिति, विपन्नता

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार रहते थे। आज भी थोडे बहुत संयुक्त परिवार भारतीय समाज में दिखाई देते हैं। इन परिवारों में पुरुष जब तक अविवाहित रहते हैं, तब तक परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ संभालते हैं। लेकिन जब उनकी शादी हो जाती है तो, पूरा परिवार और अपने बीवी–बच्चे साथ–साथ संभालने में दिक्कतें आती हैं। फिर परिवार के नायक को अपने खुद के बीवी–बच्चों के लिए पूँजी बचाने का भी इरादा होता है। ऐसी ही अवस्था के बारे में पिंजरे की मैना' में चंद्रकिरण सौनरेक्सा जी कहती हैं, "हमारा परिवार भाई साहब के देहरादून चले जाने के बाद आर्थिक दृष्टि से संकट में था उन्होंने घर पर बिल्कुल खर्च को कुछ नहीं भेजा।"[2] ऐसी हालत में चंद्रकिरण जी खुद पैसों का कुछ इन्तजाम करती है । इस तरह के हालात कई परिवारों में उभर आते हैं। जो अब समाज में एक आम बात बन गयी है कि शादी के बाद लड़का अपने बीवी, बच्चों को लेकर अलग रहता है।

आमतौर पर मुनष्य चाहता है कि, उसके परिवार के आर्थिक व्यवहार ठीक– ठाक चलते रहें लेकिन दैनिक जीवन के खर्चे और सुख–दुख पर होनेवाले खर्चों को पूरा करते–करते मनुष्य पीछे कुछ बचा नहीं पाता। अगर मुश्किल से वह कुछ बचा लेता है, तो कुछ गहनें आदि बनाकर रखता है। वह भी ज्यादा दिन तक संभालकर नहीं रख पाता। परिवार पर अगर कोई आर्थिक संकट आये तो उस जमा पूँजी को भी गँवाना पड़ता है अपने परिवार की स्थिति के बारे में 'शिकंजे का दर्द' की। आत्मकथाकार सुशीला टाकभौरे जी कहती हैं कि, "आर्थिक कठिनाई के दिनों में गहनें गिरवी रखकर खर्च चलाते थे। कभी गहने बिक जाते थे।"[3] इस तरह जमा पूँजी आर्थिक विपत्ति में परिवार की जरुरतों को पूरा करने

Copyright © 2022Authors

CamScanner

ISSN No: 2321-936X (Print)
Volume-37, No-1, 2022 (Jan-March)

में मददगार बन जाती है। लेकिन उन गहनों को गिरवी रखते या बेचते समय इन लोगों को एक मानसिक त्रासदी से गुजरना पड़ता है फिर भी गरीब घरों के लोगों को यह सब सहने की आदत सी बन गयी है।

मनुष्य को अर्थ की जरुरत हमेशा रहती है। कई मनुष्य अपनी आमदनी की कमी के कारण, तो कई लोग विभिन्न कारणों से आर्थिक रूप से परेशान रहते हैं। इसी तरह 'रमणिका गुप्ता' जी की 'हादसे' इस आत्मकथा से पता चलता है कि, रमणिका जी और उनके साथी देश सेवा के लिए जो आन्दोलन चलाते हैं। उस आन्दोलन में उन्हें कई तरह की आर्थिक परेशानियों से जूझना पड़ता है। यहाँ तक कि कभी–कभी खाने के लिए भी तरसना पड़ता है। रमणिका जी उनके मोर्चे की प्रतिनिधि थी, इसलिए उन्हें खाने–पीने का प्रबंध खुद करना पड़ता था। फिर रमणिका जी कोई प्रबंध कर कार्यकर्ताओं से कहती, "हो गया रे हो गया भोजन का प्रबन्ध हो गया।"[4] इस तरह देशसेवा से प्रभावित ये लोग अच्छे–खासे घर से होने के बावजूद बहुत सारी तकलीफें उठाते रहते थें। इसके बारे में रमणिका जी आगे कहती हैं कि, "मेरे पास सीमित कपड़े थे, इसलिए उन्हें धो सुखाकर इस्तेमाल करना मेरी मजबूरी थी। उन दिनों हम साफिस्टीकैटिड सामग्री अपनी इस जरूरत के लिए खरीदने में सक्षम नहीं थे।"[5] हालांकी रमणिका जी एवं उनके साथी कार्यकर्ता सम्पन्न घरों से थे। अच्छे–खासे पढ़े–लिखे वर्ग से थे। जिन्हें स्वयं के लिए रुपए कमाना कोई मुश्किल काम नहीं था। लेकिन उन्होंने अपना जीवन देशसेवा के लिए खर्च करने की ठानी थी। इसलिए वे इन सारी आर्थिक परेशानियों को उठा रहे थे।

निचले एवं मध्य वर्ग की आर्थिक पीड़ा भारत देश की प्राचीन अर्थव्यवस्था खेती पर निर्भर थी। आजादी के बाद इसमें ढेर सारे बदलाव आए और भारत में औद्योगिक क्रांति भी हुई। भारतीय समाज व्यवस्था में गरीब और मध्यवर्गीय लोग काफी तादाद में रहते हैं। इन निचले तबकों के लोगों और मध्यवर्गीय लोगों की विभिन्न आर्थिक परेशानियाँ चलती रहती हैं। ढेर सारे लोग अपना सारा जीवन आर्थिक परेशानियों को दूर करने में बीताते हैं। फिर भी आखिरकार यह लोग खत्म हो जाते हैं, लेकिन इनकी आर्थिक समस्याएँ खत्म नहीं होती। इस तरह से पीड़ित जीवन को जीनेवाला बहुत बड़ा समाज इस आवादी से भरे भारत में मौजूद है, भारतीय गरीब और मध्यवर्गीय लोगों के उपेक्षित जीवन का यथार्थ इन महिला आत्मकथाओं में व्यक्त हुआ है।

आर्थिक तकलीफों में जीवन व्यतीत करनेवाले गरीब, मध्यवर्गीय परिवारों में सुख–दुख में भी आवश्यक साधन–सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती। कूड़ा–कवाड़ा' इस आत्मकथा में अजीत कौर जी बीमार पड़ने पर पति से कहती हैं कि, "मुझे संतरे ला दो। या संतरों के लिए पैसे ही दे दो डॉक्टर ने ज्यूस पीने को कहा है।"[6] यह सुनकर उनके पति उन्हें अपमानित करते हुए कहते है, "जा अपने बाप के घर, अगर संतरे चाहिए तो।"[7] इस तरह आर्थिक रूप से कमजोर होने से बहुत सारे परिवार बीमारी में भी कई चीजों के अभाव में दिन गुजारते रहते हैं। कई सारे गरीब तो दवा– दारू और इलाज को भी तरसते रहते हैं।

सिर्फ बीमारी में ही नहीं तो जीने मरने के मुश्किल समय में भी इन लोगों को अपनी आर्थिक स्थिति के कारण चुपचाप बैठना पड़ता है। 'खानाबदोश' आत्मकथा में अजीत कौर के परिवार के साथ ऐसा ही कुछ हुआ था जब उनकी बेटी 'कैंडी' विदेस में पढाई के लिए गयी थी और वहाँ पर एक दुर्घटना में बुरी तरह से जल गयी थी। उस समय अजीत कौर जी किसी तरह रुपयों का इन्तजाम कर विदेश जाती है। मां को विदेश में आया देखकर कैंडी सोच में पड़ जाती है, कि मां ने रुपयों का इन्तजाम किस तरह किया होगा? इस चिंता से अपनी तकलीफ को भूलकर मां से कहती है, "मुझे तो लगता है, मेरे ठीक होने में दो महीने लग जायेंगे।... आप दो महीने कहाँ रहोगी? इतना फॉरेन एक्सचेंज कहाँ से मिलेगा?"[8] इस उदाहरण से यह पता चलता है कि, गरीब, मध्यवर्गीय लोग खुद के जी–जान की चिंता करने के बजाय आखिरी समय तक आर्थिक चिंता में पल पल मरते रहते हैं। क्योंकि वे अपने परिवार की आर्थिक स्थिति जानते है और ऐसे आर्थिक खर्च उनके बस की बात नहीं होती।

भारत को विकसनशील देश कहा जाता है क्योंकि विश्व में आबादी के दूसरे स्थान पर यह देश है। इसमें गरीब, निचले तबके के लोग एवं मध्यवर्गीय लोग ज्यादा संख्या में रहते हैं, जिनका विकास नहीं हुआ है। इसका सबसे बड़ा कारण रूप में है। इन गरीब लोगों को दुख–दर्द के समय भी अपने पर खर्च करना मुश्किल होता है। बीमारी के समय गरीब, भीखारी, बेसहारा लोग सरकारी अस्पतालों में जाते

Copyright © 2022Authors

ISSN No: 2321-936X (Print)
Volume-37, No-1, 2022 (Jan-March)

हैं। जहाँ पर हर दिन काफी भीड़ मौजूद रहती हैं। ऐसे समय कभी–कभी वक्त पर इलाज न मिलने से किसी मरीज के साथ जानलेवा हादसा भी हो जाता है। ऐसी ही एक घटना 'दोहरा अभिशाप' की लेखिका कौसल्या वैसंत्री के साथ भी घटी थी अपनी आत्मकथा में वे कहती हैं कि, बचपन में वे अपनी छोटी बहन को सरकारी अस्पताल में ले गयी थी। जहाँ पर काफी भीड़ थी। कौसल्या जी बहन को लेकर लाईन में खड़ी थी। उनका नंबर आने तक उनकी बहन की तबीयत ज्यादा बिगड गयी। तब कौसल्या जी के शोर मचाने पर उनकी बहन को डॉक्टर ने देखकर भरती करवाया। उसके बाद जो हुआ उसके बारे में वे कहती हैं कि, ''वार्ड में नर्स ने अहिल्या का बुखार देखा और किसी काम से वार्ड से बाहर गई। इधर अहिल्या ने आँखे घुमाई और झटका देकर शांत हो गई। उसके प्राण–पखेरु उड गए।''[9] इस तरह की घटनायें गरीबों और आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के साथ हर दिन घटती हैं। लेकिन उनकी मौत पर न कहीं हंगामा होता है, न ही कहीं खबर छपती है। इससे पीड़ित लोग इसे अपनी किस्मत समझकर चुपचाप बैठ जाते हैं।

ऐसे ही एक बार कौसल्या जी सबसे छोटी बहन को टांसिल की तकलीफ के कारण अस्पताल ले गयी थीं। वहाँ पर डॉक्टर ने जाँच पड़ताल के बाद तुरंत एक छोटा– सा ऑपरेशन किया था। ऑपरेशन के बाद बहन को संभालकर घर ले जाना था। उस समय उनके पास किराये के पैसे नहीं थे। इसके बारे में वे कहती हैं कि, ''बस या ताँगे के लिए मेरे पास पैसे नहीं थे। तब नागपुर में रिक्शे भी नहीं थे। मैं धीरे–धीरे पैदल उसे घर ले आई।''[10] भारत की बहुत बड़ी आबादी आर्थिक अभाव में इस तरह का जीवन जी रही हैं। जिसे वक्त पर इलाज और आर्थिक मदद नहीं मिलती। यह विश्व में महासत्ता बनने जा रहे भारत का असली रूप हैं, जिसमें सुधार होना आवश्यक है।

गरीब और आर्थिक विपत्ति में रहनेवाले लोगों की ऐसी ही एक दास्तान 'लगता नहीं है दिल मेरा' इस 'कृष्णा अग्निहोत्री जी की आत्मकथा से पता चलती है। जहाँ पर कृष्णा अग्निहोत्री जी पति को छोड़ने के बाद पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती थी गर्ल्स डिग्री कॉलेज खंडवा में हिन्दी व्याख्याता पद पर उनकी नियुक्ति हो गयी थी इस नौकरी की प्रक्रिया पूर्ण करने हेतु नोड्यूज के तीन सौ रुपये जमा करना अनिवार्य हो गया था। इतने रुपये कृष्णा जी के पास नहीं थे। नौकरी का प्रश्न था ऐसे समय कोई भी मदद नहीं मिलती। उस समय के बारे में वे कहती हैं कि, ''बहुत रोई कि मैं वापस कर दूँगी. मुझे कहीं से भी रुपये दिलवा दें।..[11] तभी पड़ोस के एक वकील ने उनकी की और वे अपनी नौकरी पर कार्यान्वित हो गई। गरीब और मध्यवर्ग के लोगों की सदा से यही परेशानी रहती है, कि वक्त पर रुपए–पैसे न मिलने से वे अच्छी खासी नोकरियों से हाथ धो बैठते हैं। कई–कई तो थोडे बहुत रुपयों का इन्तजाम न कर पाने की वजह से अच्छा मौका गँवा बैठते हैं। इस बात का गम सारी उम्र उनके दिल में रहता है। यह भारत के कई लोगों के जीवन की त्रासदी है, जो केवल आर्थिक कमजोरी कि वजह से दरिद्र जीवन जीते रहते हैं।

गरीबों का जीवन कोई विशेष महत्त्वपूर्ण जीवन नहीं होता। सिर्फ आये दिन जैसे–तैसे काटते रहने की औचपचारिकता निभाने जैसा होता है। न इनकी कोई खास मंझिल होती है और न ही कोई बड़ा सपना। उनके इस तरह के अभावों भरे जीवन के शिकार उनके छोटे–छोटे बच्चे भी होते रहते हैं। वैसे तो बाल्यावस्था में आर्थिक स्थिति के कारण और महंगाई के कारण बच्चों को गरीबी में जीने की, अभावों को सहने की कला अपने आप आ जाती है। शिकंजे का दर्द' की लेखिका सुशीला टाकभौरे जी कहती हैं कि, ''लड़कियाँ बचपन में गुड्डा–गुडियों का खेल खेलती हैं। मुझे दुकान के महँगे खिलौने, गुड्डा–गुडिया नहीं मिल सके। कभी माँ, कभी नानी पुरानी चिन्दियों या दर्जी की कतरनों के रंगीन कपडे बाँस की बारीक सीकों पर लपेटकर गुड्डा, गुडिया बनाकर देती थी।''[12] इस तरह का अभावग्रस्त जीवन गरीब घरों के बच्चों को भी जीना पड़ता है। कभी कभी बच्चे किसी चीज के लिए जिद पर आ जाए तो माँ–बाप को दोहरा संताप हो जाता है। एक तो आर्थिक कमजोरी की वजह से और दूसरा बच्चों की जिद पूरी न करने से, ऐसे हालात में माँ बाप बच्चों पर गुस्सा होते हैं, कभी मार–पीट भी करते हैं। इसी तरह सुशीला टाकभौरे जी एक बार किसी चीज के लिए माँ से जिद करती हैं, उस समय उनकी माँ कहती है कि, ''रईस की बेटी है? शहजादी है? सुरखाव के पर लगे हैं, चील का मूत माँगती है, नहीं मिलेगा तो क्या करेगी? फालतू परेशान करती है।''[13] गरीब घर के बच्चों का इस तरह का अभावों भरा बचपन तो गुजर जाता है। लेकिन बड़े हो जाने पर जब यह सब याद आता है, तो मन में कई वेदनाएँ उठती हैं। ठीक वैसी ही वेदना यह सब लिखते समय सुशीला टाकभौरे जी को महसूस हुई होगी।

Copyright © 2022Authors

ISSN No: 2321-936X (Print)
Volume-37, No-1, 2022 (Jan-March)

किसानों का आर्थिक जीवन भारत खेती प्रधान देश है। इसलिए यहाँ खेती करनेवाले किसान और मजदूरों की संख्या ज्यादा है। ये लोग अपने परिवार के भरण–पोषण के लिए सुबह–शाम मेहनत करते रहते हैं। यह खेती बरसात पर अवलम्बित होती है। वहीं मजदूरी करनेवाले लोगों का आर्थिक जीवन कारखानों के मालिकों तथा ठेकेदारों के हाथ में रहता है। किसान रात दिन खून पसीना बहाकर धान उपजाता है। लेकिन उस किसान और उसके परिवार को दो वक्त की रोटी के लिए तरसना पड़ता है। यह किसान के जीवन की बहुत बड़ी विडम्बना है। किसान परिवार में जन्मी मैत्रेयी जी अपने परिवार की स्थिति के बारे में कस्तूरी कुण्डल बसै' में कहती है कि, "गृहस्थी में खर्चों का अन्त नहीं। हर दम न कपड़े लत्ते पूरे हो, न मिर्च मसाले ठीक से जुटे।"[14] इस तरह किसान का परिवार दो वक्त की रोटी को तरसते रहता हैं। दुनिया–जहान को रोटी देनेवाला किसान भूखा मरता है और उसके साथ भूखे मरनेवाले परिवार को देख कर दुखी होता है।

किसान सुबह शाम विभिन्न चिंताओं से आतंकित दिखाई देता है। समय पर वारिश न गिरना, खेती को समय पर बीज, खाद, दवाईयाँ न दे पाना खेती में समय पर पानी देना, इसमें बिजली का आना–जाना, बिजली का बील न भर सकें तो विजली का कटना आदि विभिन्न परेशानियों में किसान जीता है। अगर किसी किसान की ब्याह लायक लड़की हो, तो वह उसकी शादी की परेशानी में अलग तरह से चिंतित रहता है। फिर भी गांव–मोहल्लों के जो रीति–रिवाज है, उससे एक–दूसरे को मदद करने की परंपरा दिखाई देती है। यह भारतीय संस्कृति की पहचान है। इसके बारे में मैत्रेयी जी अपना अनुभव व्यक्त करती है, जब मैत्रेयी की शादी में गाँव के लोग तथा रिश्तेदारों के जरिए चन्दा करके भात आता है, तो बारात में इसकी चर्चा होती है। उस समय कस्तूरी की सहेली गौरा कहती है कि, "कढीखायों को जवाब दे दो की भात तो आता ही चन्दा करके है। बहन बेटी के यहाँ जानेवाले सामान और पइसा रकम में घर कुनबा और गाँव मोहल्ले के लोग अपनी सामर्थ्य के हिसाब से दस पाँच या दो एक रुपए का सहयोग नहीं करते क्या?"[15] इस तरह गाँव देहात के लोग एक–दूसरे के सुख दुख में साथ देने के लिए आगे आते हैं। जिनसे विभिन्न त्रासदियों में जीनेवाले लोगों को एक आधार मिलता है। ऐसी कई सारी आर्थिक परेशानियों में गरीब, मध्यवर्ग एवं तबके के लोगों का जीवन बीतता है।

बुनियादी जरूरतों में आर्थिक कठिनाई – हर मनुष्य के जीवन में एक ही इच्छा होती है कि, अपना और परिवार का पेट भर सके। सबको दो वक्त की रोटी, जरूरत भर के कपड़े और मकान मिले। लेकिन सोचनेवाली बात यह है, क्या यह सबको संभव होता है? भारत में आजादी से पहले देशवासियों को बताया गया था कि सबको रोटी, कपड़ा, मकान और सुखी जीवन मिलेगा। लेकिन आज यह आश्वासन झूठा साबित हुआ है आज के विशाल जनसंख्या को बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए भी काफी जद्दोजहद करनी पडती है।

रोटी – दुनिया भर के लोगों को हम देखते हैं, सुबह शाम मेहनत, मजदूरी में कर वे अपना पेट भरने के इन्तजाम में व्यस्त रहते हैं। हर एक जीव को अपने पेट में अन्न (ऊर्जा) डालना निहायत जरूरी होता है, जिस कार्य में मनुष्य भी कार्यरत दिखता है। इस हिसाब से मनुष्य की सबसे बड़ी जरूरत है दो वक्त की रोटी रोटी जब तक पेट में न हो इन्सान को कुछ भी नहीं सूझता। रोटी पेट में जाने पर ही शरीर को ऊर्जा मिलती है, फिर शरीर और दिमाग काम करने लगते हैं। दुनिया भर के गरीब लोगों की यह त्रासदी रही है, कि उन्हें दो वक्त की रोटी भी ठीक तरह से हासिल नहीं होती। 'खानाबदोश' में अजीत कौर जी अपने परिवार के दो वक्त की रोटी की स्थिति के बारे में कहती हैं कि, "किचन में जाकर एल्यूमिनियम के चपटे से डिब्बे में पानी जैसी पतली दाल और कोई सब्जी और सूखी रोटियाँ ले आती, जो हम तीनों अपने कमरे में बैठकर खा लेती।"[16] इस तरह सीमित आय में परिवार का पेट पालना गरीब लोगों को बड़ा चिंताजनक और कष्टप्रद होता है। वे दिन रात अपने खर्चो और परिवार के रोजी–रोटी के इन्तजाम में संघर्षरत रहते हैं। अजीत कौर जी कहती हैं कि, "दिन रात बस पैसों का हिसाब किताब और जोड़–तोड़ करते गुजर जाते हैं। जिंदगी की सबसे ऊँची और सबसे आलीशान और सबसे अहम् समना बस एक ही रह जाती है, कि इन पैसों में महीने के सारे तीस दिन गुजर जाएँ।"[17] सीमित आय में पूरे महीने का गुजारा करना उनके लिए चुनौती से कम नहीं होती। यह गरीब और मध्यवर्ग के लोगों के जीवन का सच है जो जीने की चिंता में पल पल मरते रहते हैं।

Copyright ⓒ 2022Authors

CamScanner

ISSN No: 2321-936X (Print)
Volume-37, No-1, 2022 (Jan-March)

निष्कर्ष –

अन्त में हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भारत देश की विषम अर्थव्यवस्था के कई सामाजिक कारण हैं। भारत में चलनेवाले वर्णभेद, जातिभेद ने सम्पत्ति और कामकाज को बाटकर रख दिया था। जिससे सामाजिक उच–नीचता फैली थी, जो आर्थिक असमानता का बहुत बड़ा कारण है जो निचले तबके के लोग है, उन्हें पैसा कमाना और धन सम्पत्ति संग्रहित करना मुश्किल होता था। इस कारण उन्हें अपना पेट भरना भी कठिन हो जाता था। गाँव शहर के गिरे पड़े कामकाज करके ये लोग अपनी उपजीविका करते थे। ऐसे समाज के लोगों की बरसात के दिनों में और भी दैन्यावस्था हो जाती है। शिकंजे का दर्द में सुशीला टाकभौरे जी कहती हैं कि, "बरसात के दिनों में माँ नानी सुखाये हुए महुआ भूनकर हमको खाने के लिए देती।... कभी सूखे चने तवे पर भूनकर खाते।.... कड़की के दिनों यह सब नहीं मिल पाता था, तब हम सब मुंह लटकाये बरसता पानी देखते रहते थे।"[18] इस तरह ये परिवार भूख लगने पर खाने पीने को तरसते रहते थे। गरीब को क्या बरसात और क्या आम मौसम, सुशीला जी का परिवार वैसे भी बारोमास खाने पीने को तरसता नजर आता है। गरीब घरों में जैसे तैसे पेट भरने का काम किया जाता है। कभी कभी रुखी सुखी खाने पर जी ऊब आए तो आदमी कराह उठता है। इसके बारे में सुशीला जी कहती हैं कि, "घर की सब्जी अच्छी नहीं पकाने पर पिताजी नाराज होकर माँ से कहते थे 'जानवरों का तब बना देती है।"[19] इस तरह गरीब के घर में नाम मात्र के लिए पेट भरने के लिए रोटी और खाना बनता है, जहाँ रुची, स्वाद और गुणवत्ता की कोई बात नहीं होती। सिर्फ पेट भरना और दिन काटने का सिलसिला चलते रहता है।

सन्दर्भ

1. कूड़ा–कबाड़ा – अजीत कौर, प्र0सं0 1999, पृ०–149.
2. पिंजरे की मैना – चंद्रकिरण सौनरेक्सा, प्र0सं0 2010, पृ०–115.
3. शिकंजे का दर्द – सुशीला टाकभौरे, प्र0सं0 2011, पृ0–30.
4. हादसे – रमणिका गुप्ता, प्र0सं0 2005, पृ०–42.
5. वही, पृ0–112.
6. कूड़ा–कबाड़ा–अजीत कौर, प्र0सं0 1999, पृ०–107.
7. वही, पृ०–107.
8. खानाबदोश – अजीत कौर, प्र0सं0 2009 पृ०–23.
9. दोहरा अभिशाप – कौसल्या बैसंत्री, प्र0सं0 1999, पृ०–56.
10. वही, पृ०–64.
11. लगता नहीं है दिल मेरा – कृष्णा अग्निहोत्री, प्र0सं0 2010, पृ०–222.
12. शिकंजे का दर्द – सुशीला टाकभौरे, प्र0सं0 2011, पृ०–15.
13. वही, पृ०–36.
14. कस्तूरी कुण्डल बसै – मैत्रेयी पुष्पा, प्र0सं0 2002, पृ०–12.
15. वही, पृ०–231.
16. खानाबदोश – अजीत कौर, प्र0सं0 2001, पृ०–80.
17. वही, पृ०–89.
18. शिकंजे का दर्द – सुशीला टाकभौर, प्र0सं0 2011 पृ०–32.
19. वही, पृ०–41.

Copyright © 2022Authors